बिहार राज्य

बनाम

रमेश सिंह

(The State of Bihar
Vs.
Ramesh Singh)

(2 अगस्त, 1977)

(न्यायाधिपति एन०एल० ऊंटवालिया और पी० एन० सिंघल)

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)—धारा 227 और 228—विचारण का आरम्भिक प्रक्रम—विचारण के शुरू में तथा आरम्भिक प्रक्रम पर अभियोजक द्वारा पेश किए जाने वाले साक्ष्य की सत्यता, यथार्थ और प्रभाव का अति सावधानी से निर्णय नहीं किया जाना चाहिए—न्यायाधीश विचारण के इस प्रक्रम पर विस्तारपूर्वक विचार करने के लिए आबद्ध नहीं है—परख और निर्णय का वह स्तर, जो अभियुक्त के दोष के बारे में या अन्यथा निष्कर्ष अभिलिखित किए जाने के लिए अंतिम रूप से लागू किया जाना होता है, संहिता की धारा 227 या 228 के अधीन मामले का विनिश्चय करने के प्रक्रम पर यथार्थतः लागू नहीं किया जाना होता।

प्रत्यर्थी की पत्नी, श्रीमती तारा देवी, को उसके घर की रसोई में जलता हुआ पाया गया था। प्रत्यर्थी की पत्नी का भाई, जो समीप ही रहता है, घटनास्थल पर आया। यह कहा गया है कि उसने प्रत्यर्थी और उसके भाई को तारा देवी के जलते हुए शरीर के निकट खड़े हुए और आग को बुझाने के लिए कोई उपाय न करते हुए पाया। तारा देवी की मृत्यु स्पष्टतया उसके शरीर पर अत्यधिक जलन के घावों के परिणामस्वरूप हुई थी। प्रथम इत्तिला रिपोर्ट चन्द्रेश्वर प्रसाद सिंह द्वारा पुलिस थाने में दर्ज कराई गई थी जिसमें प्रत्यर्थी पर दण्ड संहिता की धारा 302 और 201 के अधीन अपराध करने का आरोप लगाया गया

1977(8) eILR(PAT) SC 1

था । अन्ततः पुलिस द्वारा उसके विरुद्ध आरोपपत्र प्रस्तुत किया गया था और मामला दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 209 के अधीन प्रत्यर्थी के विचारण के लिए सेशन न्यायालय को सुपुर्द किया गया था। जब मामला संहिता की धारा 226 के अनुसार अपर लोक अभियोजक द्वारा तृतीय अपर सेशन न्यायाधीश के न्यायालय में आरम्भ किया गया था तब प्रत्यर्थी की ओर से यह दलील दी गई थी कि उसके विरुद्ध विचारण किए जाने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं है और उसे धारा 227 के अनुसार उन्मोचित कर दिया जाना चाहिए । अपर सेशन न्यायाधीश ने वह दलील स्वीकार कर ली और अभियुक्त को उन्मोचित कर दिया। इस अपील में अपीलार्थी—बिहार राज्य—ने सेशन न्यायालय के पूर्वोक्त आदेश पर अभ्याक्रमण करने के लिए पटना उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण के लिए आवेदन किया । उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण खारिज कर दिया । अतः उच्चतम न्यायालय में अपील की गई । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित—दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 227 और 228 को एक साथ पढ़ने पर, जैसा कि उन्हें पढ़ना चाहिए, यह स्पष्ट हो जाएगा कि विचारण के शुरू में तथा आरम्भिक प्रक्रम पर उस साक्ष्य की, जिसे पेश करने की अभियोजक ने प्रस्थापना की है, सत्यता, यथार्थ्य और प्रभाव का अतिसावधानी से निर्णय नहीं किया जाना चाहिए और न ही अभियुक्त की सम्भाव्य प्रतिरक्षा को कोई महत्व दिया जाना चाहिए। न्यायाधीश के लिए यह बाध्यकर नहीं है कि वह विचारण के उस प्रक्रम पर विस्तार से विचार करे और भावुकता की दृष्टि से उसकी जांच करे कि क्या तथ्य, यदि साबित हो जाएं, अभियुक्त की निर्दोषिता से असंगत होंगे या नहीं । परख और निर्णय का वह स्तर, जो अभियुक्त के दोष के बारे में या अन्यथा निष्कर्ष अभिलिखित किए जाने के लिए अन्तिम रूप से लागू किया जाना होता है, संहिता की धारा 227 या 228 के अधीन मामले का विनिश्चय करने के प्रक्रम पर यथार्थतः लागू नहीं किया जाना होता है । उस प्रक्रम पर न्यायालय को यह नहीं देखना होता है कि क्या अभियुक्त की दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त आधार हैं अथवा क्या यह निश्चित है कि विचारण का अन्त उसकी दोषसिद्धि होगा । अभियुक्त के विरुद्ध अत्यधिक संदेह, यदि वह विषय संदेह की सीमा तक रहे, विचारण की समाप्ति पर उसके दोष के सबूत का स्थान नहीं हो सकता है । किन्तु आरम्भिक

प्रक्रम पर चाहे ऐसा अत्यधिक संदेह हो जिससे न्यायालय को यह विचार करना पड़े कि यह उपधारणा करने के लिए आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है तब न्यायालय यह नहीं कह सकता कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं हैं। (पैरा 4)

यदि वह साक्ष्य जो, अभियोजक अभियुक्त के दोष को साबित करने के लिए पेश करने की प्रस्थापना करता है, प्रतिपरीक्षा में आक्षेप किए जाने से पूर्व पूर्णरूप से स्वीकार कर लिया जाता है या प्रतिरक्षा साक्ष्य द्वारा, यदि कोई हो, खण्डित किया जाता है, यह दर्शित नहीं कर सकता कि अभियुक्त ने अपराध किया है, तब विचारण के लिए अग्रसर होने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं होगा। (पैरा 4)

यदि विचारण की समाप्ति के समय अभियुक्त के दोष या निर्दोषिता की बाबत पलड़े बराबर-बराबर हों तो बात संदेह के फायदे के सिद्धान्त पर मामले का अन्त उसकी दोषमुक्ति से होना चाहिए। किन्तु यदि दूसरी ओर धारा 227 या धारा 228 के अधीन आदेश करने के आरम्भिक प्रक्रम पर ऐसा है तब ऐसी स्थिति में आम तौर पर और साधारणतया जो आदेश दिया जाना होता है वह धारा 228 के अधीन दिया जाएगा न कि धारा 227 के अधीन। (पैरा 4)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1973]	(1973) 2 एस० सी० आर० 66=[1973]1 उम० नि० प० 33: निर्मलजीत सिंह हून बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य और एक अन्य (Nirmaljit Singh Hoon *Vs.* The State of West Bengal and Another);	5
[1964]	(1964) 3 एस० सी० आर० 639: चन्द्र देव सिंह बनाम प्रकाश चन्द्र बोस (Chandra Deo Singh *Vs.* Prakash Chandra Bose).	5

1977(8) eILR(PAT) SC 1

दाण्डिक अपीली अधिकारिता : 1971 की दाण्डिक अपील संख्या 51.

1975 के दाण्डिक पुनरीक्षण संख्या 699 में पटना उच्च न्यायालय के तारीख 18 फरवरी, 1976 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाज़त लेकर की गई अपील।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री यू० पी० सिंह और एस० एन० झा।
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री बी० पी० सिंह और ए० के० श्रीवास्तव

अभिलेख अधिवक्ता

अपीलार्थी की ओर से	श्री यू० पी० सिंह
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री बी० पी० सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति एन० एल० ऊंटवालिया ने दिया।

न्यायाधिपति ऊंटवालिया—

विशेष इजाज़त लेकर की गई इस अपील में प्रत्यर्थी, बिहार राज्य में मोतिहारी में मुंशी सिंह महाविद्यालय कालेज में अर्थशास्त्र का प्राचार्य (प्रोफेसर) है। 26 नवम्बर, 1973 को पूर्वाह्न लगभग 3 बजे प्रत्यर्थी की पत्नी, श्रीमती तारा देवी, को उसके घर की रसोई में जलता हुआ पाया गया था। एक हल्ला उठा। तारा देवी का भाई चन्द्रेश्वर प्रसाद सिंह, जो उक्त महाविद्यालय में वनस्पति विज्ञान का प्राचार्य है और समीप ही रहता है, घटनास्थल पर आया। यह कहा गया है कि उसने प्रत्यर्थी और उसके भाई को तारा देवी के जलते हुए शरीर के निकट खड़े हुए और आग को बुझाने के लिए कोई उपाय न करते हुए पाया। तारा देवी की मृत्यु स्पष्टतया उसके शरीर पर अत्यधिक जलन के घावों के परिणामस्वरूप हुई थी। प्रथम इत्तिला रिपोर्ट चन्द्रेश्वर प्रसाद सिंह द्वारा पुलिस थाने में दर्ज कराई गई थी जिसमें प्रत्यर्थी पर दण्ड संहिता की धारा 302 और 201 के अधीन अपराध करने का आरोप लगाया गया था। अन्ततः पुलिस द्वारा उसके विरुद्ध आरोपपत्र प्रस्तुत किया गया था और मामला दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—जिसे इसमें इसके पश्चात् संहिता कहा गया है—की धारा 209 के अधीन प्रत्यर्थी के विचारण के लिए सेशन न्यायालय को सुपुर्द किया गया था।

2. जब मामला संहिता की धारा 226 के अनुसार अपर लोक अभियोजक द्वारा 1975 की सेशन विचारण संख्या 66 में मोतिहारी में तृतीय अपर सेशन न्यायाधीश के न्यायालय में आरम्भ किया गया था तब प्रत्यर्थी की ओर से यह दलील दी गई थी कि उसके विरुद्ध विचारण किए जाने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं हैं और उसे धारा 227 के अनुसार उन्मोचित कर दिया जाना चाहिए। अपर सेशन न्यायाधीश ने वह दलील स्वीकार कर ली और तारीख 30 अप्रैल, 1975 वाले अपने आदेश द्वारा अभियुक्त को उन्मोचित कर दिया। इस अपील में अपीलार्थी—बिहार राज्य— ने सेशन न्यायालय के पूर्वोक्त आदेश पर अभ्याक्रमण करने के लिए पटना उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण के लिए आवेदन किया। उच्च न्यायालय ने तारीख 18 फरवरी, 1976 वाले अपने आदेश द्वारा पुनरीक्षण खारिज कर दिया। अतः यह अपील की गई है।

3. हमारे लिए न तो यह आवश्यक है और न ही उचित है कि हम प्रत्यर्थी के विरुद्ध अभियोजन मामले के तथ्यों का विस्तृत वर्णन करें अथवा उन समस्त सामग्रियों और साक्ष्य का उल्लेख करें जो सेशन न्यायालय में विचारण के आरम्भ होने पर अभियोजक द्वारा पेश किए जाएं। उस सम्बन्ध में अनावश्यक ब्यौरों से बचना है ताकि उससे न तो अपीलार्थी के अभियोजन मामले पर और न ही प्रत्यर्थी के प्रतिरक्षा कथन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े क्योंकि इसमें इसके पश्चात् कथित किए जाने वाले संक्षिप्त कारणों से हम निचले न्यायालयों के आदेशों को अपास्त करने और यह निदेश देने जा रहे हैं कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध विचारण की कार्यवाही की जाए इसलिए हम यह चेतावनी देना चाहेंगे कि कोई भी ऐसी बात, जो इस निर्णय में हमारे आदेश के समर्थन में कही जाए, विचारण में किसी भी पक्षकार के मामले पर जरा सा भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती और न ही इसे प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली समझा जाए।

4. संहिता की धारा 226 के अधीन अभियोजन के लिए मामला आरम्भ करते समय अभियोजक को अभियुक्त के विरुद्ध लगाए गए आरोप का वर्णन करना होता है और यह कथन करना होता है कि वह अभियुक्त के दोष को किसी साक्ष्य से साबित करने की प्रस्थापना करता है। तत्पश्चात् आरम्भिक स्तर पर न्यायालय का यह कर्त्तव्य होता है कि वह मामले के अभिलेख और उसके साथ पेश किए गए दस्तावेजों पर विचार करे और

1977(8) eILR(PAT) SC 1

उस निमित्त अभियुक्त और अभियोजन द्वारा किए गए निवेदनों की सुनवाई करे। उसके पश्चात् न्यायाधीश को संहिता की धारा 227 या धारा 228 के अधीन आदेश पारित करना होता है। यदि "न्यायाधीश यह समझता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है तो वह अभियुक्त को उन्मोचित कर देगा और ऐसा करने के अपने कारणों को लेखबद्ध करेगा।" जैसा कि धारा 227 के अधीन व्यादिष्ट है। दूसरी ओर यदि "न्यायाधीश की यह राय है कि ऐसी उपधारणा करने का आधार है कि अभियुक्त ने ऐसा अपराध किया है जो—

* * * *

(ख) अनन्यतः न्यायालय द्वारा विचारणीय है तो वह अभियुक्त के विरुद्ध लिखित रूप में आरोप विरचित करेगा"। जैसा कि धारा 228 में उपबन्धित है। दोनों उपबन्धों को एक साथ पढ़ने पर, जैसे कि उन्हें पढ़ना चाहिए, यह स्पष्ट हो जाएगा कि विचारण के शुरू में तथा आरम्भिक प्रक्रम पर उस साक्ष्य की, जिसे पेश करने की अभियोजक ने प्रस्थापना की है, सत्यता, यथार्थ्य और प्रभाव का अतिसावधानी से निर्णय नहीं किया जाना चाहिए और न ही अभियुक्त की सम्भाव्य प्रतिरक्षा को कोई महत्व दिया जाना चाहिए। न्यायाधीश के लिए यह बाध्यकर नहीं है कि वह विचारण के उस प्रक्रम पर विस्तार से विचार करे और भावुकता की दृष्टि से उसकी जांच करे कि क्या तथ्य, यदि साबित हो जाएं, अभियुक्त की निर्दोषिता से असंगत होंगे या नहीं। परख और निर्णय का वह स्तर, जो अभियुक्त के दोष के बारे में या अन्यथा निष्कर्ष अभिलिखित किए जाने के लिए अन्तिम रूप से लागू किया जाना होता है, संहिता की धारा 227 या 228 के अधीन मामले का विनिश्चय करने के प्रक्रम पर यथार्थतः लागू नहीं किया जाना होता है। उस प्रक्रम पर न्यायालय को यह नहीं देखना होता है कि क्या अभियुक्त की दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त आधार हैं अथवा क्या यह निश्चित है कि विचारण का अन्त उसकी दोषसिद्धि होगा। अभियुक्त के विरुद्ध अत्यधिक संदेह, यदि वह विषय संदेह की सीमा तक रहे, विचारण की समाप्ति पर उसके दोष के सबूत का स्थान नहीं हो सकता है। किन्तु आरम्भिक प्रक्रम पर चाहे ऐसा अत्यधिक संदेह हो जिससे न्यायालय को यह विचार करना पड़े कि यह उपधारणा करने के लिए आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है तब न्यायालय यह नहीं कह सकता कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है। अभियुक्त

के दोष की उपधारणा, जो आरम्भिक प्रक्रम पर, की जाती है, फ्रांस में दाण्डिक मामलों के विचारण को लागू होने वाली विधि के अर्थ में नहीं है जहां (फ़्रांस में) अपराधी के बारे में यह उपधारणा की जाती है कि वह दोषी है जब तक इसके प्रतिकूल साबित नहीं कर दिया जाता। किन्तु यह केवल प्रथमदृष्टया विनिश्चय करने के प्रयोजन के लिए है कि क्या न्यायालय को विचारण के लिए अग्रसर होना चाहिए या नहीं। यदि वह साक्ष्य जो, अभियोजक अभियुक्त के दोष को साबित करने के लिए पेश करने की प्रस्थापना करता है, प्रतिपरीक्षा में आक्षेप किए जाने से पूर्व पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया जाता है या प्रतिरक्षा साक्ष्य द्वारा, यदि कोई हो, खण्डित किया जाता है, यह दर्शित नहीं कर सकता कि अभियुक्त ने अपराध किया है, तब विचारण के लिए अग्रसर होने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं होगा। यह उपदर्शित करने के लिए कि किससे एक अथवा दूसरा निष्कर्ष निकलेगा, परिस्थितियों की सांगोपांग सूची देना न तो सम्भव है न उचित ही। हम एक और उदाहरण देकर विधि के अन्तर को स्पष्ट करेंगे। यदि विचारण की समाप्ति के समय अभियुक्त के दोष या निर्दोषिता की बाबत पलड़े बराबर-बराबर हों तो बात संदेह के फायदे के सिद्धान्त पर मामले का अन्त उसकी दोषमुक्ति में होना चाहिए। किन्तु यदि दूसरी ओर धारा 227 या धारा 228 के अधीन आदेश करने के आरम्भिक प्रक्रम पर ऐसा है तब ऐसी स्थिति में आम तौर पर और साधारणतया जो आदेश दिया जाना होता है वह धारा 228 के अधीन दिया जाएगा न कि धारा 227 के अधीन।

5. **निर्मलजीत सिंह हून बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य और एक अन्य**[1] में न्यायाधिपति शैलत ने न्यायालय के बहुमत की ओर से निर्णय देते हुए **चन्द्र देव सिंह बनाम प्रकाश चन्द्र बोस**[2] में इस न्यायालय के पूर्ववर्ती निर्णय की रिपोर्ट के पृष्ठ 79 के प्रति निर्देश किया जिसमें न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि इस न्यायालय ने दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 202 और 203 में अन्तर्विष्ट समरूप उपबन्धों के संदर्भ में यह अधिकथित किया था "कि कसौटी यह होनी चाहिए कि क्या आगे कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार मौजूद है न कि यह कि सिद्धदोष करने के लिए पर्याप्त आधार मौजूद हैं। इस न्यायालय ने अपना मत

[1] (1973) 2 एस सी० आर० 66=[1973] 1 उम० नि० प० 33, 48.

[2] (1964) 3 एस० सी० आर० 639.

1977(8) eILR(PAT) SC 1

व्यक्त करते हुए यह कहा है कि जब कोई प्रथमदृष्टया साक्ष्य मौजूद हो—भले ही जिस व्यक्ति के विरुद्ध परिवाद में आरोप लगाए गए हों, उस व्यक्ति के पास कुछ प्रतिरक्षा मौजूद हो—तो मामले को उपयुक्त रूप में और उपयुक्त प्रक्रम में ही समुचित न्यायालय द्वारा विनिश्चित किए जाने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए किन्तु आदेशिका जारी करने से इन्कार नहीं किया जाना चाहिए"। दृष्टान्त स्वरूप न्यायाधिपति शैलत ने यह भी कहा था "अतः जब तक कि मजिस्ट्रेट यह निष्कर्ष नहीं निकालता है कि उसके समक्ष प्रस्तुत किया गया साक्ष्य परस्पर विरोधी है अथवा वह अन्तर्निहित रूप से अविश्वसनीय है, तब तक वह आदेशिका जारी करने से इनकार नहीं कर सकता, यदि ऐसे इनकार के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण में उस साक्ष्य से प्रथमदृष्टया मामला साबित हो जाता है।"

6. यह तथ्य संदेहपूर्ण या विवादग्रस्त प्रतीत नहीं होता है कि तारा देवी की अप्राकृतिक मृत्यु हुई थी और उसके शरीर पर जलने के घाव थे। विचारण में विनिश्चित किया जाने वाला प्रश्न यह है कि क्या प्रत्यर्थी ने, जैसा कि अभियोजन पक्ष का मामला है, उसकी हत्या करके उसके शरीर को आग लगा दी थी या उसने स्वयं आग लगा कर आत्महत्या की थी। यह निस्संदेह विचारण के समय विनिश्चित किए जाने के लिए गम्भीर मामला है। किन्तु आरोप विरचित करते समय मोदी द्वारा लिखित मैडिकल जूरिसप्रूडेन्स के प्रति प्रचुर निर्देश करना तथा उस डॉक्टर की, जिसने उस महिला की शव परीक्षा की थी, मरणोत्तर रिपोर्ट पर अतिसावधानी से निर्णय करना बिल्कुल न्यायोचित नहीं था जैसा विचारण न्यायाधीश ने किया है। अभियोजन पक्ष के कथन के अनुसार, प्रत्यर्थी अपनी छात्राओं में से एक छात्रा के साथ प्रेम करता था, जिसका नाम नूपुर घोष था और इससे प्रत्यर्थी तथा उसकी पत्नी अभागिन तारा देवी के बीच गम्भीर मतभेद उत्पन्न हो गए जिससे पूर्वकथित को, अभियोजन पक्ष द्वारा अभिकथित रीति से अपना दुस्साहसिक रास्ता साफ करने का प्रोत्साहन मिल गया। दूसरी ओर यह प्रतीत होता है कि प्रतिरक्षा पक्ष ने यह सुझाव दिया कि प्रत्यर्थी के अभिकथित प्रेमालाप के कारण तारा देवी ने आत्महत्या कर ली। क्या प्रत्यर्थी विचारण के अन्तिम प्रक्रम पर अपनी प्रतिरक्षा साबित करने में समर्थ होगा, इसका कोई अधिक महत्व नहीं है। निश्चित रूप से अभियोजन पक्ष को युक्तियुक्त संदेह से परे अपना मामला साबित करना होगा। यद्यपि अभिकथित घटना के समय

प्रत्यर्थी के घर में उसका भाई, उसके भाई की पत्नी और बच्चे मौजूद थे तथापि ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि अभियोजन पक्ष के पास घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का कोई दृष्टिक परिसाक्ष्य नहीं था। मामला पूर्णतया तो नहीं पर अधिकांशत: परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर निर्भर करेगा। अभियुक्त के विरुद्ध विभिन्न परिस्थितिजन्य साक्ष्य के प्रति निर्देश से उसके दोष का निर्णय करने के लिए अधिक कड़े सबूत लेने होंगे। किन्तु इस प्रक्रम पर अपर सेशन न्यायाधीश का यह कहना ठीक नहीं था 'ऐसा प्रतीत होता है कि तारा देवी की हत्या से अभियुक्त को सम्बद्ध करने के लिए न तो कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य है न ही कोई परिस्थितिजन्य साक्ष्य।' उसे प्रत्यर्थी के विरुद्ध आरोपपत्र के प्रस्तुत किए जाने के बारे में मोतिहारी के सर्किल निरीक्षक तथा पुलिस अधीक्षक के विभिन्न मतों के प्रति निर्देश भी नहीं करना चाहिए था।

7. कुछ अन्य परिस्थितियों के अलावा, जैसा कि प्रतीत होता है, इस मामले में अभियोजन पक्ष यह साबित करने की प्रस्थापना करता है और वह उन्हें साबित करने में सफल हो गया या नहीं यह एक भिन्न मामला है कि उच्च न्यायालय ने अपने आक्षेपित आदेश में तीन परिस्थितियां प्रगणित की हैं। हम यह बात और कह देना चाहते हैं और वह भी इस प्रक्रम पर मामले के विनिश्चय के लिए स्थूल रूप से मत व्यक्त करने के प्रयोजनार्थ कि, घटना के एक दिन पूर्व प्रत्यर्थी द्वारा तारा देवी पर हमले की कहानी को सम्भवत: चन्द्रेश्वर सिंह, इत्तिलाकर्ता, के साक्ष्य द्वारा साबित करने का प्रयास किया गया था और ऐसा प्रतीत होता है कि सही या गलत रूप से वह यह कहने की चेष्टा भी करेगा कि उक्त हमले के समय प्रत्यर्थी ने उसे मार डालने की धमकी भी दी थी। उच्च न्यायालय यह दृष्टिकोण अपनाने के लिए विश्वस्त हो गया था कि तीनों परिस्थितिजन्य तथ्य, यदि साबित भी हो जाएं तो भी अभियुक्त की निर्दोषिता से असंगत नहीं होंगे और तब यह भी कहा "विरोधी पक्षकार के विरुद्ध अत्यधिक संदेह हो सकता है किन्तु जिन तीन परिस्थितियों का मैंने अभी-अभी ऊपर वर्णन किया है, उनके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वे अभियुक्त की प्रतिरक्षा से असंगत हैं।" उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया उक्त मत उस विधि की पृष्ठभूमि में बिल्कुल विपरीत नहीं है जो हमने संहिता की धारा 227 और 228 के उपबन्धों के संदर्भ में ऊपर बताई हैं।

1977(8) eILR(PAT) SC 1

8. ऊपर कथित कारणों से हम उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय के आक्षेपित आदेश को अपास्त करते हैं और यह निदेश देते हैं कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध समुचित आरोप विरचित किया जाएगा या किए जाएंगे और विचारण को विधि के अनुसार आगे बढ़ाया जाएगा।

अपील मंजूर की गई और मामला प्रतिप्रेषित किया गया।

ता/दे०

प्र०भा०स०मु०रि०रो०न०दि०—5—25 ला०/78—20-2-79—2000